Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2018 SHISRRJ | Volume 1 | Issue 4 | ISSN : 2581- 6306

# संगीत शिक्षा के विविध आयाम

**डॉ0 रोमा अरोरा**
एसोसिएट प्रोफेसर–संगीत गायन,
राजा मोहन गर्ल्स पी0जी0 कालेज, अयोध्या,उत्तर प्रदेश।

**शोध–सारांश–** संगीत शिक्षा, गुरू–शिष्य परम्परा के माध्यम से मौखिक रूप से, प्राचीन काल से ही चली आ रही है। संगीत गुरूमुखी विद्या है। प्राचीनकाल में संगीत शिक्षण पद्धति मन्दिरों में, दरबारों में सीना–बसीना तालीम के माध्यम से होती थी। अपनी मौलिक विचारधारा, रीति, शैली आदि के अनुरूप शिक्षण–पद्धति क्रमशः सम्प्रदाय, मत (मठ), प्रबन्धमान के अन्तर्गत बानो, तदन्तर घरानों के रूप में विकसित हुई। शालेय शिक्षण का प्रचलन प्राचीन एवं मध्ययुग में भी यत्र–तत्र देखने को मिलता है। वर्तमान समय संस्थागत संगीत शिक्षण का है जिसके कारण ही आज संगीत घर–घर में गूँज रहा है।

**बीज शब्द–** आयाम, शालेय शिक्षण, प्रबन्ध ज्ञान, वाग्गेयकार, कलावन्त, घराना।

संगीत शिक्षा की परम्परा अपने देश में प्राचीन काल से चली आ रही है। प्रत्येक विद्या के शिक्षा ग्रन्थों का नाम मिलते हैं; जिनमें नारद द्वारा रचित "नारदीय शिक्षा" एवं प्रमुख ग्रन्थ है।

संगीत शिक्षा या शिक्षण के इतिहास पर दृष्टिपात करने से संगीत–शिक्षण प्रणाली का ऐतिहासिक स्वरूप स्पष्ट होता है।

भारतीय संस्कृति में गुरू का स्थान सर्वोच्च माना गया है–

**"गुरूर्ब्रह्मा, गुरूर्विष्णु गुरूर्देवो महेश्वरः।**
**गुरूः साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्रीगुरूवे नमः।।"**

वैदिक काल से मध्ययुग तक संगीत–शिक्षा, गुरु–शिष्य परम्परा द्वारा दी जाती रही है। प्रशिक्षण देने के दो रूप प्रचलित रहे–

**प्रथम–**पिता द्वारा पुत्र को प्रशिक्षण।

**द्वितीय–**गुरु द्वारा शिष्य को प्रशिक्षण।

संगीत शिक्षा गुरु मुखी शिक्षा है। गुरु से शिष्य एवं शिष्य से प्रशिष्यों को यह विद्या मौखिक रूप से मिलने की परम्परा प्राचीन काल से ही चली आ रही है। उस समय स्वर लिपिब( करने की व ध्वनि अंकित करने की कोई तकनीक उपलब्ध नहीं थी, जिससे सबक संग्रहीत किया जा सके। सब कुछ मौखिक परम्परा के द्वारा ही सीखना–सिखाना था, फिर चाहे मन्दिर–संगीत हो या दरबारी संगीत।

संगीत में गुरु–शिष्य परम्परा शास्त्र एवं कला के अन्तर्गत शिवमत, ब्रह्ममत, भरतमत, हनुमन्मत इत्यादि सभी संगीत एवं नाट्य के स्वतन्त्र सम्प्रदाय थे। जिनकी अपनी पृथक–पृथक मान्यतायें थीं। दलित, कोहल, मतंग तथा अभिनवगुप्त 'भरतमत' के अनुयायी थे। प्राचीन प्रबन्ध–गान की शुद्धा, भिन्ना, गौड़ी, बेसरा एवं साधारणी गीतियाँ, ध्रुवपद की गौरहारी, डागुर, नौहार एवं खंडार बानी ;वाणियाँद्ध तथा ख्याल के ग्वालियर, आगरा, जयपुर, पटियाला, किराना इत्यादि घरानों का विकास गुरु–शिष्य परम्पराओं के आधार पर ही हुआ। तात्पर्य यह है कि 'मत', 'सम्प्रदाय', 'वाणी' या 'घराने' कला के प्रति एक विशिष्ट दृष्टिकोण से

उत्पन्न होते है। इनकी अपनी मौलिक विचारधारा, रीति या शैली होती है। जिसे उनके शिष्य निष्ठापूर्वक आत्मसात कर, परम्परागत रूप में प्रशिष्यों को प्रदान करते थे। परन्तु शैली में परिवर्तित दृष्टिकोण, स्वतन्त्र एवं व्यक्तिगत अभिव्यक्ति से शैली बदल जाती है, नवीन शाखाओं और उपशाखाओं के जन्म होते हैं। भारतीय संगीत में **'सम्प्रदाय वाणी'** या घरानों का विकास उपर्युक्त क्रम में हुआ है।[1]

**'घराना'** शब्द की चर्चा मध्ययुग से पूर्व नहीं थी। 'सम्प्रदाय' मध्ययुग में, हरिदास स्वामी के काल में था। ध्रुपद शैली के सि(हस्त स्वामी हरिदास का सम्प्रदाय अत्याधिक प्रचलित था। ध्रुपद शैली के बाद जब ख्याल शैली प्रचलित हुई, तब इस शैली के वर्ग या घराने निर्मित हो गये।

संगीत शिक्षण की गुरूकुल प(ति काफी लम्बे अवधि तक चली। इस प(ति के अन्तर्गत भारतीय संगीत बड़ी तेजी से विकसित हुआ और विश्व के श्रेष्ठतम संगीत में गिना जाने लगा, किन्तु मध्यकाल में राजनैतिक और सामाजिक परिस्थितियों में कुछ बदलाव आये कि गुरूकुल प(ति का स्थान घराना प(ति लेने लगी।

जब भारत में मुसलमान आये तो उन्होंने अपने संगीत का प्रचार किया। इस काल में भारतीय संगीत में राग–रागिनी प्रणाली का प्रचार था और वही भारतीय संगीत का आधार बनी। मुस्लिम शासक अपने साथ अरबी, ईरानी और तुर्क संगीतकारों तथा उसके साथ संगीत साहित्य भी भारत लाये। उनके साहित्य में उन्हीं रागों की व्याख्या देखी गई, जिन रागों को भारतीय बौ(, पलायन के समय विदेश ले गये थे।[2] पहले इन रागों को ईरान, टर्की, अरब आदि के संगीतकार अकेले ही गाया करते थे किन्तु बाद में इन्हें भारतीय कलाकारों के साथ मिलकर गाने लगे। इस कारण दोनों प्रकार के संगीत का समन्वय कर संशोधन किया गया। उस समय की राग–रागिनियों को चार भागों में विभाजित किया गया–

1. सोमेश्वर अथवा शिवमठ, 2. कालीनाथ अथवा कृष्णमठ, 3. भरतमठ, 4. हनुमानमठ

जबकि इसके पूर्व आठवीं शताब्दी के शंकराचार्य ने हिन्दू धर्म का प्रचार कर चार मठों की स्थापना की–

1. शृंगेरी मठ, 2. गोवर्धन मठ, 3. शारदा पीठ, 4. जोशी मठ

ये मठ तानसेन के समय तक प्रचलित रहे। यदि हम इनके वर्गीकरण पर गहन विचार करे तो ज्ञात होगा कि ये मठ संगीत शिक्षा के केन्द्र थे। जिसका आरम्भ बौ(काल में ही चुका था जिसे नालन्दा विश्वविद्यालय तथा अन्य भागों में पढ़ाया जाता था तथा संगीत की उपाधियाँ भी दी जाती थी। संगीत के छात्रों को निम्न उपाधियाँ निम्न योग्यतानुसार दी जाती थी–

**वाग्येयकार–** जो संगीतकार वाक् और गेय दोनों पक्षों का कर्ता हो, उसे **'वाग्येयकार'** की उपाधि दी जाती थी। वाग्येयकार से यह भी अपेक्षा की जाती थी कि वह अपने मधुर और प्रभावशाली संगीत से श्रोताओं का मनोरंजन कर सके।

**गंधर्व–** मार्गी और देशी, दोनों संगीत का ज्ञाता, जो संगीत कला में निपुण हो, 'गंधर्व' कहलाता था।

**नायक –** नायक की उपाधि सर्वश्रेष्ठ एवं सम्मानीय उपाधि मानी जाती थी। यह उपाधि उन संगीत विशेषज्ञों को दी जाती थी जिनमें संगीत के पण्डितों से शिक्षा ग्रहण कर सभी रागों को पहचानने एवं प्रदर्शित करने की क्षमता हो तथा व उसकी शिक्षा भी प्रदान कर सके। उनकी ध्वनि सुरीली व माधुर्यपूर्ण हो, कला व शास्त्र पक्ष का पूर्ण ज्ञाता हो। मध्यकालीन **'नायक'** उपाधि प्राप्त कलाकारों में सात प्रमुख हैं– गोपाल नायक, बैजू बावरा, अमीर खुसरो, धन्नु, मक्षू, पाण्डव और लोहान ;अलाउद्दीन खिलजी कालीनद्ध इसके अतिरिक्त उर्जू, भगवान, जसौदे, तथा दालो आदि खिलजी के बाद के नायक हैं।[3]

**पण्डित–** पण्डित की उपाधि संगीत विशेषज्ञों को दी जाती थी जो संगीत सि(ान्त से पूर्ण परिचित हो। **'पण्डित'** उपाधिस्त संगीतकार से संगीत सि(ान्तों की शिक्षा दे सकने तथा संगीत के सामान्य पहलुओं की जानकारी देने की अपेक्षा की जाती थी।

**गुणी–** जो संगीतकार तत्कालीन रागों की प्रणाली से परिचत हो और गायन तथा सामान्य वाद्यों को बजा सकने की क्षमता रखता हो, उसे **'गुनी'** कहा जाता था।

**कलावन्त –** जिन्हें संगीत के गायन तथा वादन का व्यावहारिक तथा सै(ान्तिक ज्ञान होता था, वह **'कलावंत'** कहलाते थे। ध्रुपद गायक भी मध्यकाल में कलावंत कहलाते थे।

**कव्वाल –** जिस संगीतकार को ख्याल, कौल, कलबाना और नक्श का पूर्ण ज्ञान होता था, उसे 'कव्वाल' कहते थे।

तानसेन की मृत्यु के उपरान्त उसके उत्तराधिकारियों ने संगीत के विकास के लिए बहुत काम किया तथा संगीत विद्यालय खुलवाये। उन्हें 'बानी' नाम से सम्बोधित किया जाता था। विशेष विख्यात बानियों के नाम निम्नलिखित थे–

**1. खंडार बानी :** इस बानी को हुसैन खाँ ने ध्रुपद, धमार और होरी गायन के लिए आरम्भ किया था।

**2. नौहार बानी :** इसका आविष्कार चाँद खाँ ने किया जिसमें लोकगीत सम्मिलित है।

**3. गोबरहार बानी :** इस बानी को अता हुसैन खाँ ने किया। इसमें कौल, कलबाना प्रकार का संगीत होता है।

इनके अतिरिक्त गायन की दो प्रणालियाँ और हैं जिन्हें 'रूप' के नाम से सम्बोधित किया जाता था। इसमें एक धादी रूप अथवा धाद बानी के नाम से विख्यात हुआ और दूसरा मीराज के नाम से। अकबर के शासनकाल में चाँद खाँ और सूरज खाँ, तानसेन के समकालीन थे। चाँद खाँ रात की राग–रागिनियों का गायन करता था और सूरज खाँ दिन की राग–रागिनियों का गायन करता था। इसी को धाद बानो के नाम से पुकारा गया।[4]

संगीत चिन्तकों, समीक्षकों ने सोलहवीं से उन्नीसवीं शताब्दी का युग स्वर्णयुग माना है जिसमें कला के क्षेत्र में गुप्तकाल के बाद उल्लेखनीय उन्नति हुई। दरबारी संगीत, समाज में प्रतिष्ठित हो चुका था। इस युग के **'अकबरनामा', 'आइन–ए–अकबरी', जहाँगीरनामा', 'शाहजहाँनामा'** आदि ग्रन्थों में केवल मुगलकाल के दरबार गायक–वादकों के नाम गिनाये गये हैं और तानसेन के वंशजों का परिचय मात्र दिया है। इसकी गायकी विशेषता एवं तत्कालीन संगीत की शिक्षा उसके साधन व संस्थानों की चर्चा अधिक नहीं की है। फिर भी स्थूल रूप से संगीत अपने चरम उत्कर्ष पर प्रतिष्ठित था। गायकी का सर्वांग विकास हो चुका था॥ एक ओर दरबारी संगीत था तो दूसरी ओर उत्तर भारत में भक्ति आन्दोलन का आविर्भाव हुआ, जिसमें अनेक सम्प्रदायों का उद्भव हुआ। ब्रजमण्डल के संत समाज में पुष्टिमार्गीय संस्थानों, अष्टछाप, हवेली–संगीत व अनेक सम्प्रदायों द्वारा इस युग में ध्रुपद–धमार गायन प(ति विकसित हो रही थी। कालान्तर में राजकीय प्रश्रय में विकसित ख्याल, ठुमरी की गायकी इस युग की नई उपज थी, जिसमें कलापक्ष अधिक विकसित हुआ, जो अद्यतन अनुकरणीय है। इस युग में भी संगीत शिक्षा की विधि एवं रीति, व्यक्तिगत शिक्षण के अनुरूप ही रही, जिसमें समय व ज्ञान क्षेत्र का कोई बन्धन नहीं रहता था। गुरू का उद्देश्य शिष्य को निपुण बनाने व श्रेष्ठ स्वर का कलाकार बनाने का ही होता था। यह वही काल था, जब **'घराना प(ति'** की नींव पड़ी।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि संगीत की शिक्षण प्रक्रिया निरन्तर बदलती रही है। भारत में संगीत की शिक्षा–पद्धति के कई और दौर आये जिनमें बदलाव हुये। इन सभी काल चक्रों को हम मोटे तौर पर तीन भागों में बाँट सकते हैं–

प्रथम भाग, जब संगीत के शिक्षण में गुरुकुल प(ति का प्रचलन था, जो प्राचीनकाल से मध्यकाल तक चली। द्वितीय भाग, जब ध्रुपद की चार बानियाँ प्रसि( थी, जिन्हें चार घराने कहा जा सकता है। ध्रुपद गायकी के प्रचार से भी पूर्व चार मत प्रचलित थे, जो घराने के ही पर्याय माने जा सकते हैं।[5]

तीसरा भाग, घराना पद्धति–जिसके अन्तर्गत राज्याश्रित कलाकारों द्वारा पीढ़ी–दर–पीढ़ी संगीत शिक्षण की व्यवस्था थी।

चतुर्थ भाग, में स्वतन्त्रता के पश्चात नई शिक्षा प(ति का आगमन हुआ। यहाँ एक सबसे महत्त्वपूर्ण एवं उचित परिवर्तन ऐसा हुआ जिससे घरानों की रक्षा सुचारू रूप से की जा सकती थी। इन परिस्थितियों में घरानों में आनुवांशिक नायक अपने घरानों की शिक्षा अपने परिवार के बाहर भी देने को तैयार हो गये। इस समय घरानेदार कलाकारों की संकीर्ण मनोवृत्ति में परिवर्तन आया, और वे इस उक्ति का पालन करने लगे– **"वंशो द्विविजोजन्मना विद्यया च।"**

अर्थात वंश दो प्रकार से चलते हैं, एक जन्म से दूसरा विद्या से।

इस प्रकार गुरुकुल प(ति की संगीत शिक्षा आज तक अक्षुण्ण रूप में चली आ रही है किन्तु इस प(ति का प्रचार कम हो गया है। इस प(ति के अनुशासन, कड़ी मेहनत एवं साधन के बल पर अच्छे गुणी कलाकार निकल सकते हैं। वस्तुतः इस प(ति में गुण के साथ–साथ कुछ दोष भी है।

आज से लगभग सवा सौ वर्ष पूर्व पं0 विष्णु दिगम्बर पुलस्कार एवं पं0 विष्णु नारायण भातखण्डे जी ने संगीत शिक्षा को नया आयाम तथा स्वरूप दिया। उन्होंने संस्थागत संगीत शिक्षा की नींव रखी। संस्थाओं में सामूहिक रूप में बड़ी संख्या में संगीत जानने–समझने वाले विद्यार्थी तैयार करने की योजना बनाकर, कार्यान्वित भी किया। आज संस्थागत संगीत शिक्षण बहुत प्रचलित है। देश की अनेक संस्थायें संगीत शिक्षण में अपना योगदान दे रही है।

स्वतन्त्रोत्तर काल में संगीत शिक्षा की दो समानान्तर धाराओं का सृजन हुआ, जिसके अनुरूप संगीत के शिक्षक भी दो वर्गों में बँट गये हैं। प्रथमतः – वे शिक्षक जो आधुनिक शिक्षण संस्थाओं जैसे विश्वविद्यालय, महाविद्यालय, माध्यमिक, प्रारम्भिक विद्यालयों से जुड़े हैं, तथा द्वितीय – गैर संस्थागत शिक्षक, जो निजी रूप से अपने घर या शिष्य के घर अथवा स्वचालित विद्यालय की संस्था में शिक्षा–दान करते हैं। संस्थागत शिक्षण पद्धति का ही यह परिणाम है कि आज संगीत जन–जन के घर में गूँज रहा है।

## सन्दर्भ–सूची


1. अमरेश चौबे, संगीत की संस्थागत शिक्षा प्रणाली, पृ. 07
2. राम अवतार बीर, भारतीय संगीत, द्वितीय भाग, पृ. 155
3. राम अवतार वीर, भारतीय संगीत, द्वितीय भाग, पृ. 157
4. राम अवतार वीर, भारतीय संगीत, द्वितीय भाग, पृ. 159
5. डॉ. आबान ए. मिस्त्री, पखावज और तबला के घराने और परम्परायें, पृ. 01